International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(1): 90-91

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(1): 90-91
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-12-2016
Accepted: 16-01-2017

अंगिरस
शोधच्छात्र, एम. फिल्. (संस्कृत)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

राजेश कुमार
शोधच्छात्र, एम.फिल्. (संस्कृत)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Correspondence
अंगिरस
शोधच्छात्र, एम. फिल्. (संस्कृत)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

संस्कृत व प्राकृत अभिलेखों में वर्णित 'अश्वमेध यज्ञ'

अंगिरस, राजेश कुमार

प्रस्तावना

अश्वमेध यज्ञ भारत का एक प्रसिद्ध और प्राचीन यज्ञ है। इसकी प्राचीनता इसी आधार पर और पुष्ट हो जाती है कि ऋग्वेद के दो सूक्तों में भी अश्वमेधीय अश्व तथा उसके हवन का विशेष विवरण दिया गया है। अश्वमेध का आरम्भ फाल्गुन मास की शुक्लपक्ष की अष्टमी या नवमी तिथि से अथवा ज्येष्ठ या आषाढ़ मास की शुक्लाष्टमी से किया जाता था।

सार्वभौमिकता प्राप्त करने का इच्छुक राजा या चक्रवर्ती नरेश ही अश्वमेध का अधिकारी माना जाता था। आश्वलायन श्रौतसूत्र में कहा गया है कि ''जो सब पदार्थों को प्राप्त करना चाहता है, सब विजयों का इच्छुक है और समस्त समृद्धि पाने की कामना करता है वह इस यज्ञ का अधिकारी है।'' यह मुख्यतः राजनीतिक यज्ञ था और इसे वही राजा या सम्राट् कर सकता था जिसका आधिपत्य अन्य सभी राजा मानने को तैयार हों। यह यज्ञ उसकी विस्तृत विजयों, सम्पूर्ण अभिलाषाओं की पूर्ति एवं शक्ति तथा साम्राज्य की वृद्धि का द्योतक होता था। शतपथ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मणों में भी इसका बड़ा ही विशद वर्णन दिया गया है।[1] वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत के आश्वमेधिक पर्व में अश्वमेध यज्ञ किया गया है।

अश्वमेध यज्ञ का स्वरूप – इस यज्ञ में सार्वभौमिकता प्राप्त करने के उद्देश्य से अश्व को स्वतन्त्र घूमने के लिये छोड़ा जाता है। यज्ञ के प्रारम्भ में सार्वभौमिकता का इच्छुक राजा यज्ञमान के रूप में याज्ञिक मंडप में प्रवेश करता है उसके पीछे उसकी चारों रानियाँ सुसज्जित होकर अनेक दासियों तथा राजपुत्रियों के साथ प्रवेश करती हैं। इनके पदनाम भी थे। (1) महिषी (पटरानी), (2) वावाता (राजा की प्रियतमा), (3) परिवृक्त्री (परित्यक्ता भार्या) तथा (4) पालागली (हीन जाति की रानी)। इस यज्ञ में प्रयुक्त अश्व बड़ा ही सुडौल, सुन्दर तथा दर्शनीय चुना जाता था। अश्व किस रंग का हो इसके लिये भी बहुत से नियम बताये गये हैं। अश्व श्वेत रंग का तथा उस पर काले रंग के वृत्ताकार चिन्ह हों तो और अच्छा है। यदि अश्व श्वेत रंग का न हो तो उसका अग्रभाग काला तथा पृष्ठभाग श्वेत व केश गहरे नीले रंग के होने चाहिये। अश्व को तेज़ दौड़ने वाला होना चाहिये।

उपर्युक्त लक्षणों से युक्त अश्व को अध्वर्यु यज्ञ के निमित्त बाँधता है। इसके उपरान्त अश्व को पास के तालाब में विधिवत् स्नानादि कराकर कुछ औपचारिकताएँ पूर्ण करके अध्वर्यु और यज्ञमान अश्व के कान में शुक्ल यजुर्वेदोक्त मंत्र का सस्वर पाठ करते हैं। तदुपरान्त इसके सिर पर जयपत्र बाँधकर एक वर्ष के लिये स्वतंत्र घूमने हेतु छोड़ दिया जाता है। इसकी रक्षा के लिये एक सौ राजकुमार, एक सौ सभासद, एक सौ उच्चाधिकारियों के पुत्र तथा एक सौ छोटे अधिकारियों के पुत्र सशस्त्र इसके पीछे–पीछे प्रस्थान करते हैं। इस अश्व को यदि कोई पकड़ ले तो उसे इन चार सौ अश्वरक्षकों से युद्ध करना पड़ता था। यदि अश्व खो जाता था तो दूसरे अश्व से यह क्रिया आरम्भ से पुनः की जाती थी।

अश्व की यात्रा के समय उसकी अनुपस्थिति में तीन इष्टियाँ प्रतिदिन सवितृदेव के निमित्त दी जाती थीं और ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जाति के वीणावादक स्वरचित पद्य प्रतिदिन राजा की स्तुति में वीणा बजाकर गाते थे। जब तक अश्वमेध समाप्त नहीं होता, तब तक एक अध्वर्यु राजा बनकर रहता है और राजा कहता है ''हे ब्राह्मण एवं सामतों यह अध्वर्यु आपका राजा है, जो सम्मान आप मुझे देते हैं उसे आप इसे दें।[2]

एक वर्ष बाद जब घोड़ा सकुशल लौट आता है तब राजा दीक्षा ग्रहण करता है। अश्वमेध तीन सुत्या दिवसों का अहीन याग है। 'सुत्या' का तात्पर्य सोमलता को कूटकर सोमरस निकालने से है। इसमें बारह दीक्षाएँ, बारह उपसद और तीन सुत्याएँ होती थीं। 21 अरत्नि ऊँचे 21 यूप प्रस्तुत किये जाते थे।

दूसरे सुत्यादिवस पर अश्वमेधीय अश्व को अन्य तीन घोड़ों के साथ रथ में जोतकर तालाब में स्नान कराया जाता था। साथ ही चारों रानियों और अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्गाता तथा होता का परस्पर संवाद होता था। इसमें दासियां भी सम्मिलित रहती थी। इसमें अश्लील विवाद भी होता था। साथ ही गूढ़ पहेलियों का पूछना आदि होता था। राजा व्याघ्र या सिंह चर्म पर बैठता था।

तीसरे सुत्या दिवस पर उपांग याग होते हैं और ऋत्विजों को दक्षिणा दी जाती है। होता, ब्रह्मा, अध्वर्यु तथा उद्गाता को पूरब, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओं में विजित देशों की सम्पत्ति क्रमशः दक्षिणा में दी जाती थी।

अश्वमेध एक महत्त्वपूर्ण यज्ञ है जिसके प्रत्येक अंश का गूढ़ रहस्य हैं इस यज्ञ के महत्व का पता इसी बात से लगाया जा सकता है कि यह यज्ञ सम्राट् का प्रमुख कर्त्तव्य समझा जाने लगा। आम जनता इमसें भाग लेने लगी एवं इसका पक्ष धार्मिक की अपेक्षा सामाजिक अधिक होता गया।

रामायण में भगवान राम तथा महाभारत में युधिष्ठिर ने भी अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया था। जिसके प्रमाण हमें वाल्मीकि रामायण तथा वेदव्यास विरचित महाभारत में प्राप्त होते हैं।

अभिलेखों में अश्वमेध यज्ञ

ऐतिहासिक राजाओं में सर्वप्रथम द्वितीय शताब्दी ई.पू. में शुंगवंशी ब्राह्मण नरेश 'पुष्यमित्र' ने दो बार अश्वमेध यज्ञ किया था जिसके प्रमाण हमें धनदेव के अयोध्या अभिलेख में प्राप्त होते हैं।[3] धनदेव के अयोध्या प्रस्तर अभिलेख में पुष्यमित्र दो अश्वमेध करने वाले राजा के रूप में उल्लिखित हुए हैं। उनके द्वारा किया गया अश्वमेध प्राचीन अश्वमेध से किस प्रकार समानता रखता है इसका उल्लेख इस अभिलेख में प्राप्त नहीं होता है। इसके लिए कालिदास के मालविकाग्निमित्र को देखना होगा जहाँ पर कालिदास ने पुष्यमित्र द्वारा अश्वमेध यज्ञ किये जाने का उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ में पुष्यमित्र ने अपने पुत्र अग्निमित्र को एक पत्र लिखा था जो यज्ञ के उद्देश्य को स्पष्ट करता है। उसमें लिखा है – ''स्वस्ति! इस मण्डप से सेनापति पुष्यमित्र विदिशा में स्थित अपने पुत्र आयुष्मान अग्निमित्र को स्नेह से आलिंगन कर यह आदेश देता है – विदित हो, राजसूय की दिशा के लिये मेरे द्वारा सैकड़ों राजपुत्रों से प्रवृत्त वसुमित्र की संरक्षता में एक वर्ष के बभीतर लौट आने के विधान से यज्ञीय घोड़ा छोड़ा गया था। वह सिन्धु नदी के दाहिने तट पर विचरता हुआ अश्वारोही सेना से युक्त यवन शासक द्वारा पकड़ा गया। इसके पश्चात् यवन सेना तथा वसुमित्र की सेना में घनघोर युद्ध हुआ। धनुर्धर वसुमित्र ने शत्रुओं को विजित कर बलपूर्वक मेरा अश्वमेध का घोड़ा छुड़ाया। जिस प्रकार अंशुमान द्वारा लाए हुए घोड़े से उनके पिता महासागर ने यज्ञ किया था उसी प्रकार मैं भी यज्ञ करूँगा। इस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये प्रसन्नचित्त होकर तुम्हें बहुओं के साथ यहाँ आना चाहिए।[4]

इस प्रकरण से यह ज्ञात होता है कि वैदिक कालीन अश्वमेध यज्ञ द्वितीय शती ई.पू. तक अपने उसी रूप में राजाओं के मध्य प्रचलित था।

इसी प्रकार सातवाहन नरेश शातकर्णि ने दो अश्वमेध यज्ञ किये।[5] द्वितीय अश्वमेध में 1 अश्व, 1 रौप्यालंकार; 1 हाथी दक्षिणा में दिये गये।

समुद्रगुप्त तथा कुमारगुप्त प्रथम द्वारा जारी किये गये अश्वमेध प्रकार के सिक्कों से यह ज्ञात होता है कि गुप्त–नरेशों में भी अश्वमेध यज्ञ लोकप्रिय था। यद्यपि प्रयाग–प्रशस्ति में अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु अश्वमेध प्रकार के सिक्कों से निश्चय ही समुद्रगुप्त द्वारा अश्वमेध यज्ञ किये जाने की पुष्टि होती है। इन सिक्कों पर दो प्रकार के विशिष्ट लेख मिलते हैं।[6] समुद्रगुप्त के उत्तर तथा पश्चिमी भारत की विजय की स्मृति में अश्वमेध यज्ञ किया गया था जो निश्चितरूप से उसके शासन के अंतिम समय में सम्पन्न हुआ होगा। अश्वमेध यज्ञ की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिये सोने के सिक्के जारी कराये गये होंगे। अश्वमेध प्रकार के सिक्के बहुत अधिक मात्रा में जारी किये गये होंगे। इस प्रकार के सिक्के 'ब्रिटिश संग्रहालय, कलकत्ता संग्रहालय तथा लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इन सिक्कों के पुरोभाग पर यज्ञ का घोड़ा यूप अथवा यज्ञ–स्तम्भ के सामने खड़ा है। घोड़े के नीचे ब्राह्मी अक्षर में 'सि' लिखा है। चबूतरे के साथ यूप है। यूप के ऊपर से पताका घोड़े के पीछे उड़ रही है। सिक्के के पृष्ठभाग पर राजमहिषी चवर पकड़े दिखलयी गयी है, वह मणियों से सुसज्जित चटाई पर खड़ी है। इन्हीं प्रकार के वर्णनों से ज्ञात होता है कि गुप्तकाल में भी अश्वमेध अत्यधिक प्रचलित यज्ञ माना जाता था।

इसी प्रकार सर्वतात का घोसूण्डी शिलालेख, शीलवर्मा का जगतपुर इष्टिका लेख, प्रवरसेन का जाब ताम्रपत्र लेख इत्यादि अश्वमेध यज्ञ के ठोस प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

अश्वमेध एक राजनीतिक यज्ञ बन चुका था और सभी सम्राट् इस यज्ञ को करना अपने जीवन के एक प्रमुख कर्त्तव्य के रूप में मानते थे। राजा दिग्विजय के पश्चात् अपनी सफलता को दर्शाने के लिये अश्वमेध का अनुष्ठान करते थे।

एक से अधिक बार भी अश्वमेध यज्ञ जैसे अत्यन्त खर्चीले यज्ञ को करने के प्रमाण मिलते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इन राजाओं की सार्वभौमिकता एक से अधिक बार खण्डित हुई होगी।

एक वर्ष भर चलने वाले इस खर्चीले यज्ञ के एक से अधिक बार किये जाने से यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि सम्भवतः इस यज्ञ को संक्षिप्त रूप में किया गया होगा क्योंकि इतने लम्बे समय और धन का अपव्यय कराने वाले इस यज्ञ को पूर्ण–विधि पूर्वक करना एक से अधिक बार सम्भव प्रतीत नहीं होता।

प्रो. महेश्वरी प्रसाद के अनुसार अश्वमेध का एकमात्र प्रयोजन 'सार्वभौमिकता' नहीं रहा होगा। कात्यायन श्रौतसूत्र का कथन है कि 'राज्ञोऽश्वमेधः सर्वकामस्य'।[7] इसी प्रकार रामायण में इन्द्र को अश्वमेध करने से ब्रह्महत्या से मुक्ति मिल गयी थी। इसी प्रकार राजा इल जो अश्वमेध से ही स्त्री रूप से पुरुषत्व को प्राप्त हुए थे। इस प्रकार संस्कृत व प्राकृत के अभिलेखों में अश्वमेध यज्ञ का स्वरूप परिलक्षित होता है।

संदर्भ ग्रन्थाः

1. यदश्वमेधस्समृद्धयै। पुण्यनामदेवयजनमध्यवस्यति।... सुवर्गस्य लोकस्य समष्टयै। 3.8.2, तैत्तिरीय ब्राह्मण।
2. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–1, पृ. 567.
3. कोसलाधिपेन द्विरश्वमेध–याजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य षष्ठेन कोशिकीपुत्रेण धनदेवेन। – धनदेव का अयोध्या प्रस्तर अभिलेख।
4. अंक–5, मालविकाग्निमित्रम्।
5. नागनिका का नानाघाट गुहा अभिलेख, द्वितीय भाग, पंक्ति–11.
6. 1) राजाधिराज पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्य प्रतिवार्यवीर्यः।
   2) पृथिवीमविजित्य दिवं जयत्या हृतवाजिमेधः।
   गुप्तयुगः : एक मुद्राशास्त्रीय अध्ययन, डॉ. मीनाक्षी सिंह, पृ. 182.
7. कात्यायन श्रौतसूत्र (20.1.1)